इकाई 11 बंगाल का विभाजन और स्वदेशी आंदोलन (1905-1908)

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपके सामने उन कारणों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जायेगा जिन्होंने ब्रिटिश सरकार को 1905 में बंगाल के विभाजन के लिए प्रेरित किया। यह इकाई इस कार्यवाही के फलस्वरूप उत्पन्न स्वदेशी आंदोलन द्वारा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में लाये गये परिवर्तनों का विवरण भी देगी। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- उस पृष्ठभूमि की व्याख्या कर सकेंगे जिसमें भारतीय राष्ट्रवादियों तथा ब्रिटिश अधिकारियों ने एक दूसरे का सामना किया
- बंगाल के विभाजन की योजना के पीछे की मंशाओं को पहचान सकेंगे
- विवेचना कर सकेंगे कि स्वदेशी आंदोलन किस प्रकार पनपा और उससे कौन सी राजनैतिक प्रवृत्तियों और कार्यप्रणालियों का विकास हुआ
- आंदोलन की शक्ति तथा उसकी राह में आई कठिनाइयों का मूल्यांकन कर सकेंगे तथा अंत में
- इस ऐतिहासिक घटना का व्यापक मूल्यांकन कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

19वीं शताब्दी के अंत तक शिक्षित मध्यम वर्ग के उन मुखर प्रतिनिधियों का उत्साह काफी कम हो गया था जो भारतीय समाज के नये नेताओं के रूप में उभरे थे।

ब्रिटेन में ग्लैडस्टोन और भारत में लॉर्ड रिपन जैसे व्यक्ति जो शिक्षित भारतीयों के महत्व को समझते

थे और उनकी आकांक्षाओं के साथ सहानुभूति रखते थे, कार्य संचालन में नहीं रहे थे। उनके बदले भारत का प्रशासन उन लोगों के हाथ में था जो बिना किसी अपवाद के शिक्षित भारतीयों की आकांक्षाओं के साथ सहानुभूति नहीं रखते थे और भारत पर ब्रिटेन के साम्राज्यवादी शिकंजे की पकड़ को ढीला करने के विरुद्ध थे। ये अधिकारी भारतीय मत की अवहेलना करते थे और अधिकारियों की रंगभेदी गतिविधियों को नजरअंदाज करते थे। उन्होंने उन नाममात्र रियायतों को भी नुकसान पहुँचाने की कोशिश की जो पहले समय-समय पर हिन्दुस्तानियों को बहुत ही अनिच्छा से दी जाती रही थीं। राज का विद्वेषपूर्ण रवैया शुरू के राष्ट्रवादियों को साफ दिखाई दे रहा था। 1900 तक अनेक राष्ट्रवादियों को सरकार को ज्ञापन देने और प्रार्थना करने की निरर्थकता का अहसास हो चला था। उनकी भारतीय प्रशासनिक सेवा में हिन्दुस्तानियों के लिए स्थान तथा विधान-सभाओं में कुछ सुधार जैसी माँगों पर ध्यान नहीं दिया गया। "अन-ब्रिटिश" कुशासन के बदले भारत में न्यायिक ब्रिटिश शासन लागू किए जाने की मांग पर भी ध्यान नहीं दिया गया। लगभग दो दशकों तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मंच से दुहराई जाती संवैधानिक रियायतों की माँगों के बदले 1892 की नगण्य रियायतें दी गईं। 20वीं शताब्दी के शुरू में लॉर्ड कर्जन जैसे वाइसराय के कारण स्थिति और भी बिगड़ गई क्योंकि वह कांग्रेस को "अपवित्र चीज" (Unclean thing) मानता था, उसके नेताओं के निवेदन को "भाव-रहित उदासीनता" द्वारा अस्वीकार करना चाहता था और सिविल सेवा को "यूरोपियों के लिए विशेष रूप से सुरक्षित" समझता था। साम्राज्यवादियों की तरह कर्जन कट्टर नस्लवादी था तथा उसका मानना था कि "सत्य का सर्वोच्च आदर्श काफी हद तक पश्चिमी धारणा है" तथा अपने सद्भावनापूर्ण भाव में वह भारतीयों के बारे में उस स्वर में बात करता था जो "सामान्यतया हम अपने पालतू जानवरों के लिए इस्तेमाल करते हैं"। (एस. गोपाल, ब्रिटिश पॉलिसी इन इंडिया, 1858-1905, कैम्ब्रिज 1965, पृ. 227)

कर्जन के इस व्यक्तित्व से प्रारंभिक राष्ट्रवादी क्षुब्ध तथा उत्तेजित तो हुए लेकिन वे इतने हताश नहीं हुए कि हर तरह का अपमान सहते या चुप रह जाते। इस प्रकार अपने लोगों की नजर में उनका महत्व बढ़ गया। उन्होंने अपने समाज-सुधारकों तथा राजनैतिक गुरुओं से आत्मविश्वास पाया और इतना आत्मसम्मान प्राप्त किया कि वे सभ्य व्यवहार तथा स्वाभाविक न्याय की माँग करने लगे। इसके फलस्वरूप कर्जन और शिक्षित मध्यम वर्ग के राष्ट्रवादियों के बीच ठन जाना स्वाभाविक ही था। यह मुकाबला हुआ बंगाल में जहाँ भारतीय बुद्धिजीवी सबसे अधिक शक्तिशाली थे और जहाँ कर्जन का व्यवहार सबसे अधिक अपमानजनक था।

बंगाल में हमले की शुरूआत कर्जन ने की। 1899 में ही उसने कलकत्ता कॉरपोरेशन में निर्वाचित सदस्यों की संख्या घटा दी थी। यह कदम मुख्यतया शहर में यूरोपीय व्यावसायिक हितों को संतुष्ट करने के लिए उठाया गया था क्योंकि वे अक्सर लाइसेंस प्रदान करने तथा अन्य सुविधाओं में देरी की शिकायत किया करते थे। इस कार्यवाही के पीछे क्या उद्देश्य थे यह एकदम साफ था और इसका अलोकतांत्रिक स्वरूप भी निर्विवाद था। कलकत्ता के नागरिकों को लगा कि उनका अपमान हुआ है और उनके साथ अन्याय किया गया है। लेकिन इससे पहले कि वह इस अन्याय को आत्मसात् कर पाते, कर्जन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्वायत्त स्वरूप पर प्रहार कर दिया —यह विश्वविद्यालय बंगाल के शिक्षित वर्ग का गौरव था। भारतीय विश्वविद्यालय कमीशन की सिफारिशों के आधार पर, जिसके एकमात्र सदस्य (गुरुदास बैनर्जी) ने अन्यों से अपनी असहमति प्रकट की थी, कर्जन ने विश्वविद्यालय एक्ट (1904) पास कर दिया। "सभी प्रकार से शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाना"—इस उद्देश्य को बहाना बनाया गया। इस एक्ट के अन्तर्गत सिनेट के निर्वाचित सदस्यों की संख्या (अधिकतर भारतीय) घटा दी गई थी और कालेजों तथा स्कूलों को संबद्धता देने का अधिकार तथा अनुदान देने का अधिकार सरकारी अधिकारियों को सौंप दिया गया था। इस वैधानिक कदम से शिक्षित मध्यवर्ग के असंतुष्ट लोगों के मन में कोई संदेह नहीं रह गया कि वाइसराय उन्हें अपमानित करने तथा हर प्रकार से उनका मनोबल गिराने पर उतारू है। स्वाभाविक था कि मानसिक रूप से उन्हें स्वयं को इससे अधिक कठिनाइयों का सामना करने के लिए तैयार करना पड़ा व उसका मुकाबला करने के लिए तैयार होना पड़ा। सबसे बदतर कदम बहुत जल्दी ही और बहुत ही नाटकीय ढंग से उनके सामने आ गया जब 1905 में कर्जन ने बंगाल के विभाजन की घोषणा कर दी।

11.2 बंगाल के विभाजन की योजना

एक लेफ्टीनेंट गवर्नर के अधीन बंगाल का सूबा असमान जनसंख्या, विभिन्न भाषाओं और बोलियों

वाला इलाका था जिसके विभिन्न भागों की आर्थिक प्रगति भी असमान थी। खास बंगाल के अतिरिक्त (यानि पश्चिम तथा पूर्वी बंगाल के बंगला भाषी क्षेत्र) शुरू में इस सूबे में बिहार, उड़ीसा तथा आसाम भी शामिल थे। इससे पहले भी ब्रिटिश प्रशासन समय-समय पर प्रशासनिक सुविधा के लिए सूबे के क्षेत्र को छोटा करने के बारे में सोचता रहा था। 1874 में उन्होंने आसाम को अलग करके चीफ कमिश्नर का क्षेत्र बना दिया और स्थानीय विरोध के बावजूद उसमें सिलहट के मुख्य रूप से बंगाली भाषी हिस्से को भी जोड़ दिया। 1897 में आसाम में अस्थायी रूप से बंगाल के दक्षिणी लुशाई क्षेत्र को जोड़ कर उसका विस्तार कर दिया गया। लेकिन थोड़ा-थोड़ा करके छोटा करने की इस कार्यवाही से समस्याओं से भरे बंगाल जैसे बड़े सूबे के प्रशासन को चलाने का स्थायी हल नहीं निकला। इसलिए प्रशासनिक दृष्टिकोण से तथा सभी क्षेत्रों की समान प्रगति के दृष्टिकोण से भी बंगाल के पुनर्गठन की आवश्यकता तो थी ही। 1904 में जब कर्जन ने बंगाल के पुनर्गठन की बात की तो वह असंगत नहीं थी। अगर वह भिन्न भाषीय बिहार और उड़ीसा को प्रशासनिक कारणों से अलग करने की बात करता जैसा कि राष्ट्रवादी स्वयं बार-बार माँग रहे थे, कर्जन की नीति को सैद्धान्तिक तथा दूरदर्शी माना जाता। लेकिन वह तथा उसके मुख्य सलाहकार जिनमें बंगाल के लेफ्टीनेंट गर्वनर सर ए. फ्रेजर तथा गृह विभाग, भारत सरकार के सचिव एच.एच. रिसली शामिल थे क्षेत्रीय पुनर्गठन की इस माँग की आड़ में राष्ट्रीयता की आवाज का गला घोंट देना चाहते थे। इसलिए इस कदम के पीछे अंग्रेजों का उद्देश्य मुख्यतः भारत के पूर्व में राष्ट्रीय आंदोलन चलाने वालों को चोट पहुँचाना था जिनमें प्रमुख था बंगला भाषी शिक्षित मध्यम वर्ग। चूँकि वही सबसे पहले ब्रिटिश प्रशासन के आधीन आये थे, इसलिए बंगाली लोगों ने ही सबसे पहले अंग्रेजी शिक्षा, पश्चिमी उदारतावादी विचारों तथा राष्ट्रीय भावनाओं को व्यक्त करने वाले विचारों को अपनाया था। साम्राज्यवादी प्रशासन ने इन सबसे नाराज होकर कार्यवाही करने का निश्चय किया था।

11.3 योजना के पीछे मंशा

कर्जन तथा उस जैसे अन्यों की नजर में बंगाल ब्रिटिश के भारतीय साम्राज्य की सबसे कमजोर कड़ी था। उनके विचार में बंगाली "अभी से एक शक्ति बन गये थे और निश्चय ही भविष्य में बढ़ती हुई गड़बड़ी का स्रोत होंगे।" पूर्वी भारत में राष्ट्रीयता की बढ़ती हुई इस चुनौती का सामना करने के लिए कर्जन और उसके सलाहकारों ने एक प्रभावशाली समाधान ढूँढने की कोशिश की और अन्ततः वह मिला बंगाली-भाषी लोगों के विभाजन में। सरकारी मूल्यांकन इस प्रकार है: "संयुक्त बंगाल एक शक्ति है, विभाजित बंगाल विभिन्न दिशाओं में खींचने वाले दबावों के प्रभाव में आ जाएगा।" कर्जन और उसके साथी ब्रिटिश साम्राज्य के "दुश्मनों के संगठित समुदाय को विभाजित करके कमजोर बनाने" के लिए कृतसंकल्प थे। विभाजन की इस कार्यवाही या 'विभाजन और शासन' की नीति को इस प्रकार कार्यान्वित करने का निश्चय किया कि बंगालियों का भौतिक एवं मानसिक विभाजन हो सके व विभाजन की इस नीति को सफल बनाने के लिए कर्जन बंगाल के दो बड़े समुदायों — हिंदूओं तथा मुसलमानों — के बीच परस्पर संदेह तथा जलन की भावना पैदा करना चाहता था।

कर्जन और उसके सलाहकारों को पता था कि बंगाल में उनके विरोधियों में हिंदू अधिक थे क्योंकि अपने मुसलमान भाइयों के मुकाबले में इन्होंने ब्रिटिश शासन से सामाजिक आर्थिक और शैक्षिक फायदा अधिक उठाया था। कृषक होने के नाते अधिकतर मुसलमान इस प्रकार का फायदा नहीं उठा पाये थे। चालाकी से यह सुझाव देते हुए कि उनकी सरकार हिंदूओं के साथ प्रगति की होड़ में मुसलमानों का साथ देगी और उन्हें हिंदूओं के प्रभुत्व के खतरे से बचाएगी। कर्जन बंगाल के मुस्लिम बाहुल्य वाले इलाकों को अलग करके, उन्हें आसाम के साथ मिलाकर एक नया सूबा बनाना चाहता था जिसकी राजधानी ढाका हो। कर्जन को आशा थी कि इस नये प्रांत से "पूर्वी-बंगाल के मुसलमानों के बीच ऐसी एकता संभव हो सकेगी जैसी कि पुराने मुसलमान शासकों के दिनों में भी नहीं हो सकी थी।" उसे यह आशा थी कि ढाका "एक ऐसी राजधानी के रूप में उभरेगा जिसमें अगर मुसलमानों के हित प्रमुख नहीं होंगे तो कम से कम उसमें उनका शक्तिशाली प्रतिनिधित्व तो होगा।" इसीलिए कर्जन और उसके साथी बंगाल का विभाजन करके ढाका को राष्ट्रीय भावना से भरपूर कलकत्ता के मुकाबले प्रमुख राजनैतिक केन्द्र बनाना चाहते थे। हिंदूओं को प्रतिसंतुलित करने के लिए मुसलमानों का इस्तेमाल करके वे बंगाल में से मुस्लिम बाहुल्य वाला प्रान्त बनाना चाहते थे जिसमें डेढ करोड़ मुसलमान, एक करोड़ बीस लाख हिंदूओं के साथ रहते तथा बंगाल में वे बंगाली भाषियों को अल्पसंख्यक बना देना चाहते थे (जहाँ बंगाली बोलने वाले एक दशमलव नौ करोड़ लोग रहते, हिन्दी उड़ीया तथा अन्य भाषाएँ बोलने वाले साढ़े तीन करोड़ लोगों के सामने अल्पसंख्यक हो जाते)

यह शरारतपूर्ण खेल मुख्यतया शिक्षित भारतीय मध्यमवर्ग के राष्ट्रप्रेमियों की गतिविधियों पर अंकुश लगाने के लिए खेला गया था।

11.4 विभाजन

बंगाल को विभाजित करने की कर्जन की यह योजना धीरे-धीरे 1 जून 1903 में उसके सीमा पुनर्गठन के मिनट से लेकर 2 फरवरी 1905, जब विभाजन की योजना लंदन में गृह प्रशासन को भेजी गयी, के बीच साकार हुई। योजना उन्नीस जुलाई 1905 को भारत सरकार ने नये प्रांत "पूर्वी बंगाल तथा आसाम" के बनाये जाने की घोषणा कर दी, जिसमें चटगाँव, ढाका तथा राजशाही डिविजन और त्रिपुरा, मालदा तथा आसाम के इलाके शामिल थे। 16 अक्टूबर 1905 को बंगाल के तथा उसके 4 दशमलव 15 करोड़ लोगों के विभाजन के बाद यह नया प्रांत अस्तित्व में आ गया।

बोध प्रश्न 1

1 निम्नलिखित कथनों में से कौन से ठीक (√) या गलत (×) हैं:
जब बंगाल का विभाजन हो रहा था तब

i) भारत का वाइसराय लॉर्ड कर्जन था

ii) भारत सरकार के गृह विभाग का सचिव सर ए. फेजर था

iii) बंगाल का लेफ्टीनेंट गर्वनर एच.एच. रिसली था

iv) बिहार तथा उड़ीसा प्रथक प्रान्त थे।

2 बंगाल के विभाजन के पीछे कर्जन की असली मंशा क्या थी? अपना उत्तर लगभग दस लाइनों में लिखें।.

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

11.5 सरकार की गलत अवधारणा

बंगालियों के प्रति तिरस्कार दिखाते हुए तथा बहुत ही ढिठाई से बंगाल का विभाजन करते समय कर्जन और उसके साथियों ने इस कदम के विरोध में होने वाले प्रतिरोध के रूप के बारे में अपनी अटकलें लगाई थीं। उन्हें पता था कि पूर्वी बंगाल के बाबुओं को क्लर्की की नौकरियों की चिन्ता होगी। उन्हें यह भी पता था कि बंगाली जमींदारों को (जिनकी जागीरें पूर्वी तथा पश्चिमी भागों में फैली थीं) दो अलग-अलग एजेन्टों तथा प्लीडरों के वर्गों की नियुक्ति से बढ़ने वाले खर्च की फिक्र होगी। कलकत्ता हाई कोर्ट के वकीलों को नये प्रांत में अलग हाई कोर्ट खुल जाने के कारण वकालत में होने वाले नुकसान की चिन्ता होगी। कलकत्ता बन्दरगाह के आसपास जूट तथा चावल का व्यापार करने वालों को डर होगा कि चटगांव एक वैकल्पिक आयात-निर्यात केंन्द्र बन जाएगा। उन्हें यह भी ज्ञान था कि कलकत्ता के राष्ट्रवादी अपने श्रोताओं तथा अनुयायिओं के बड़े भाग की हानि से चिन्तित

होंगे। लेकिन उन्हें आशा थी कि कुछ समय के बाद यह सभी चिन्तायें कम हो जाएंगी या ज्यादा से ज्यादा कुछ देर तक विरोध सभाएं तथा प्रदर्शन होंगे जिनको सहा जा सकेगा या जिनकी उपेक्षा की जा सकेगी।

सरकार को बिल्कुल भी अनुमान नहीं था कि विभाजन से एक ऐसा तूफानी राजनैतिक आंदोलन पैदा होगा जो उसे सादरपूर्ण अप्रसन्नता व्यक्त करने के पारंपरिक तरीकों से विमुख करके अप्रत्याशित लड़ाकूपन को जन्म देगा जिसके कारण जल्दी ही वह आंदोलन स्वराज की लड़ाई में बदल जाएगा। प्रशासन ने बंगालियों के सत्तावाद के विरोध का बिल्कुल गलत अन्दाजा लगाया। बंगालियों में यह विरोध उस लंबे इतिहास की देन था जिसके दौरान वे किसी भी प्रकार के नाममात्र के केंद्रीय अंकुश से स्वतंत्र रहे थे। वे बंगालियों में विशेषकर पढ़े-लिखों में अपनी उपलब्धियों के प्रति गौरव एवं एकता की भावनाओं को भी ठीक से नहीं पढ़ पाये जो पूरी 19वीं शताब्दी के दौरान शैक्षिक बौद्धिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों के कारण प्राप्त हुई थी। आर्थिक तथा राजनैतिक गतिविधियों का केंद्र होने के अलावा कलकत्ता शहर जो अंग्रेजों के भारत की राजधानी था, बंगाली चेतना का भी केंद्र बन गया था। यहाँ बंगाल के हर भाग से विद्यार्थी आते थे तथा यहीं से प्रांत के हर हिस्से को, कभी-कभी तो उससे भी आगे अध्यापक तथा व्यावसायिक वर्ग के लोग (विशेषकर इंजीनियर, डॉक्टर वगैरा) भेजे जाते थे। एक शक्तिशाली साहित्यिक भाषा के पनपने में कलकत्ता का महत्वपूर्ण योगदान था। शहर में बहुत से उच्चस्तरीय अखबार तथा लेखकों का जुट था जो पर्चों, पत्रिकाओं तथा विकसित साहित्य का सृजन कर रहे थे।

कलकत्ता को केंद्र बनाकर ये शिक्षित बंगाली बीसवीं शताब्दी के आरंभ में साहित्य में (रवीन्द्र नाथ टैगोर के नेतृत्व में) विज्ञान में (जगदीश चंद्र बोस तथा प्रफुल्ल चंद्र राय के नेतृत्व में), राजनीति में (सुरेंद्र नाथ बैनर्जी, उभरते विपिन चंद्र पाल तथा अरविन्द घोष के नेतृत्व में) तथा धर्म के क्षेत्र में (स्वामी विवेकानंद के रूप में) अपनी उपलब्धियों से समूचे भारत को प्रेरित कर रहे थे। लगभग उसी समय उन्होंने इस बात को भी ध्यान में रखा कि बोअर लड़ाई ने तथाकथित अभेद्य ब्रिटिश कवच में कमजोरियों को प्रकट कर दिया था। उन्हें काफी प्रसन्नता हुई तथा उनमें आत्मविश्वास बढ़ा जब कमजोर माने जाने वाले पूर्व के देश जापान ने 1904-5 में जार के द्वारा शासित पश्चिमी देश रूस को हरा दिया। उनका यह बढ़ता हुआ आत्मविश्वास डराने-धमकाने तथा भेदभाव रखने वाली नस्लवादी कार्यवाहियों के प्रति तिरस्कार का भाव दिखा रहा था।

देश के अन्य भागों में अपने प्रतिपक्षों की तरह बंगाल के मध्यम वर्गीय शिक्षित हिन्दुस्तानी भी हिन्दुस्तान से ब्रिटेन की और "सम्पत्ति निकास" की सख्त आलोचना करते थे और हिन्दुस्तान में बार-बार होने वाले दुर्भिक्ष तथा प्लेग के फैलने से चिन्तित थे। उनकी अपनी आर्थिक हालत भी अच्छी नहीं थी क्योंकि उनके व्यवसायों में बहुत अधिक प्रतिस्पर्धा थी। साथ ही उनकी भू संपत्ति बँटवारे तथा उत्तराधिकार के नियम के कारण लाभकारी नहीं रही थी। सभी वस्तुओं के दाम एका-एक बढ़ जाने से हालत और भी खराब हो गई जिसका असर सभी लोगों पर पड़ा, मध्यम वर्ग पर भी। कीमतें बढ़ी 'सबसे अधिक 1905 और 1908 के बीच - जो अधिकतम राजनैतिक उथल पुथल के वर्ष थे'। (सुमित सरकार, आधुनिक भारत 1885-1947 दिल्ली, 1983 पृ.109) कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि 1905 में बंगाल और बंगाली मध्यम वर्ग कर्जन के इस हमले के सामने घुटने टेकने को तैयार नहीं था। लेकिन कर्जन को इस बात का पूरा अहसास नहीं था।

11.6 बहिष्कार, स्वदेशी तथा राष्ट्रीय शिक्षा

बंगाल में विभाजन-विरोधी आंदोलन हालाँकि पारंपरिक नरमपंथी राष्ट्रीय तरीके से शुरू हुआ फिर भी इसमें तीव्र प्रचार तथा रोषपूर्ण विरोध के अंश थे। समाचार पत्रों में विभाजन योजना के विरुद्ध अभियान छेड़ा गया, इसके विरोध में बहुत सी सार्वजनिक सभायें की गयीं तथा सरकार को इस कदम को वापिस लेने के लिए ज्ञापन दिये गये। कलकत्ता के टाऊन

हॉल में बड़ी सभा आयोजित की गयी जिनमें जिलों से आये हुए प्रतिनिधियों ने भाग लिया तथा अपनी क्षतिग्रस्त भावनाओं को व्यक्त किया। यह सब बहुत ही प्रभावशाली था जिससे विभाजन के विरुद्ध मध्यम वर्ग की स्थिति बहुत ही स्पष्ट हो गयी थी। लेकिन भारत और ब्रिटेन के उदासीन प्रशासन पर इसका कोई असर नहीं पड़ा। इन तरीकों की असफलता के कारण 1905 के मध्य से नये तरीकों की खोज शुरू हुई और इसके फलस्वरूप ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार एक प्रभावशाली हथियार के रूप में सामने आया। बहिष्कार का सुझाव सबसे पहले 3 जुलाई 1905 को कृष्ण कुमार मित्र ने दिया जिसे बाद में 7 अगस्त 1905 को टाउन हॉल की एक सभा में प्रमुख लोगों ने मान लिया। इस खोज के बाद रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी ने विभाजन के दिन को **रक्षाबन्धन** (भाई चारे के रूप में एक दूसरे की कलाई पर धागा बाँधना) तथा अरान्धन (शोक के कारण घर में चूल्हा न जलाने की प्रथा) के रूप में मनाने का आह्वान् किया। इस कार्यवाही से आंदोलन को एक नया उत्साह मिला

11. राखी संगीत:

ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार के बाद :

- स्वदेशी का समर्थन किया गया और लोगों से राष्ट्रीय कर्तव्य के रूप में भारत में बनी वस्तुओं को खरीदने का अनुरोध किया गया,
- **चरखा** (सूत कातने का चक्र) देश की जनता की आर्थिक आत्मनिर्भरता की इच्छा का प्रतीक बन गया, तथा
- हथकरघा की बनी वस्तुओं आदि को बेचने के लिए आयोजित स्वदेशी मेले एक नियमित विशेषता बन गये

स्वदेशी या भारतीय उद्यम के लिए एक नया उत्साह पैदा हो गया। बहुत से विशिष्ट भारतीय उद्योग जैसे कि कलकत्ता पौटरीज, बंगाल कैमिकल्ज, बंग लक्ष्मी कॉटन मिल्स, मोहिनी मिल्स तथा नैशनल टैनरी शुरू किये गये। आंदोलन द्वारा सृजित उत्साह के अंतर्गत विभिन्न साबुन, माचिस तथा तम्बाकू बनाने वाले उद्योग और ऑयल मिल्स, वित्तीय, गतिविधियाँ जैसे स्वदेशी बैंक इंश्योरेंस तथा स्टीम नेवीगेशन कंपनियाँ आदि भी शुरू की गई।

इस बीच ब्रिटिश वस्तुएँ बेचने वाली दुकानों के सामने धरनों के फलस्वरूप सरकार द्वारा नियंत्रित शैक्षिक संस्थानों का बहिष्कार भी शुरू हो गया। ब्रिटिश सरकार द्वारा धरना दे रहे विद्यार्थियों के संस्थानों के अनुदान, छात्रवृत्तियाँ तथा मान्यता वापिस लेने की धमकियों के कारण (ऐसा 22 अक्तूबर 1905 के कुख्यात सर्कुलर द्वारा किया गया था जिसे कारलाइल बंगाल सरकार के मुख्य सचिव ने जारी किया था और जिसके कारण इसे 'कारलइल सर्कुलर' भी कहते हैं) तथा विद्यार्थियों को फाइन करने तथा उन्हें निष्कासित करने के फैसलों से बहुत ही बड़ी संख्या में विद्यार्थियों ने 'दासता' के इन स्कूलों और कालेजों को छोड़ देने का फैसला किया। स्कूलों और कालेजों के बहिष्कार से स्वदेशी आंदालन के नेताओं को बंगाल में समानान्तर शिक्षा व्यवस्था चलाने को

बाध्य होना पड़ा। जल्दी ही अपीलें जारी की गयीं, अनुदान इकट्ठे किये गये तथा विशिष्ट व्यक्ति राष्ट्रीय शिक्षा कार्यक्रम बनाने लगे। इन्हीं प्रयत्नों के फलस्वरूप बंगाल टैक्नीकल इंस्टीट्यूट की स्थापना हुई (जिसे 25 जुलाई 1906 को शुरू किया गया था और जो बाद में कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग एंड टैक्नोलौजी में परिवर्तित हो गया और जो आज के जादवपुर विश्वविद्यालय का आधार बना), बंगाल नैशनल कालेज तथा स्कूल (जिसे 15 अगस्त 1906 को स्थापित किया गया था और जिसके प्रिंसिपल बने थे अरविन्द घोष) तथा जिलों में विभिन्न राष्ट्रीय प्राइमरी स्कूलों एवं सैकेंडरी स्कूलों की भी स्थापना हुई।

11.7 समितियाँ तथा राजनैतिक प्रवृत्तियाँ

राष्ट्रीय शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए तथा बहिष्कार एवं स्वदेशी के संदेशों को प्रसारित करने के लिए बहुत-सी राष्ट्रीय स्वेच्छा संस्थायें या समितियाँ कलकत्ता और आस-पास के जिलों में बन गयीं। इनमें प्रमुख थीं डॉन सोसायटी (जिसका नाम उस समय की प्रसिद्ध पत्रिका 'डॉन' के नाम पर रखा गया था), एन्टी सर्कुलर सोसायटी (जो प्रारंभ में 'कारलायल सर्कुलर' के विरोध में बनायी गई थी), स्वदेशबांधव, व्रती, अनुशीलन, सुहरिद तथा साधना समितियाँ, इन समितियों का काम था स्वदेशी तथा बहिष्कार का प्रचार करना, दुर्भिक्ष तथा महामारी के दिनों में राहत कार्य करना, शारीरिक एवं नैतिक ट्रेनिंग देना, दस्तकारी एवं राष्ट्रीय स्कूल खोलना, मध्यस्था कमेटियाँ बनाना तथा गाँवों में समितियाँ खोलना। इन्होंने लोक-गायकों तथा कलाकारों (जिनमें मुकुन्द दास ,भूषण दास तथा मुफीज्जुदीन बयाती प्रमुख थे) को स्थानीय बोलियों में स्वदेशी विषयों पर आधारित कला प्रदर्शन करने के लिए प्रेरित किया। इन प्रयत्नों से महान साहित्यिक प्रतिभाओं जैसी रवीन्द्रनाथ टैगोर, रजनीकांत सेन, द्विजेन्द्र लाल रॉय, गिरीन्द्र मोहिनी दासी, सैयद आबू मोहम्मद, गिरीश चंद्र घोष, खीरोदप्रसाद विद्याविनोद तथा अमृत लाल बोस आदि की राष्ट्रीय रचनाओं का गाँवों के स्तर पर प्रचार बढ़ा। इन समितियों के सिद्धांतों में धर्मनिरपेक्षता से धार्मिक पुनर्जागरण तक संतुलित राजनीति से सामाजिक सुधारवाद तक (रचनात्मक, आर्थिक, शैक्षिक तथा सामाजिक कार्यक्रमों द्वारा) सभी कुछ था और राजनैतिक उग्रवाद भी इन समितियों की सीमा में था।

वास्तव में बंगाल में स्वदेशी आंदोलन में बहुत-सी राजनैतिक विचारधाराएँ जन-मानस का समर्थन प्राप्त करने के लिए एक-दूसरे से होड़ कर रही थीं:

i) संतुलित राजनैतिक मत (जिसका प्रतिनिधित्व सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, कृष्णकुमार मित्र और नरेन्द्र कुमार सेन आदि कर रहे थे) अभी भी ब्रिटिश न्याय में आस्था रखे हुए था और आंदोलन को बहुत अधिक आगे खींचने के पक्ष में नहीं था। उदारवादी मौर्ली के ब्रिटेन में भारत सरकार के सचिव बनाये जाने पर ही उनकी आशायें आधारित थीं। लेकिन वर्तमान लड़ाकू मानसिकता के प्रति उनका अनुत्साह इतना अधिक साफ था कि वे जल्दी ही अपनी लोकप्रियता पूरी तरह से खो बैठे।

ii) सामाजिक सुधारवाद की दूसरी प्रवृत्ति जिसे रचनात्मक स्वदेशी के नाम से जाना गया का लक्ष्य राष्ट्रीय शक्ति को आत्म सहायता तथा आत्मनिर्भरता (जिसे रवीन्द्रनाथ टैगोर ने आत्मशक्ति का नाम दिया था) के द्वारा बढ़ाना था जिसके लिए स्थानीय उद्यम, राष्ट्रीय शैक्षिक प्रक्रियाएं आदि तथा गाँवों तथा शहरों के बीच की खाई को पाटने के लिए गांव सुधार समितियाँ स्थापित करने की आवश्यकता थी

   वे सब जो संतुलित राष्ट्रीयवादियों के साथ सहमत नहीं थे वे शुरू-शुरू में रचनात्मक स्वदेशी के हिमायती थे। इसके प्रमुख प्रतिनिधि थे सतीश चंद्र मुखर्जी, अश्विनी कुमार दत्त, रवीन्द्रनाथ टैगोर, प्रफुल्ल चंद्र रॉय तथा नीलरतन सरकार।

iii) हालाँकि समाज सुधारवादियों का कार्यक्रम कई तरीकों से महत्वपूर्ण था, लेकिन उन उग्र दिनों में उसके आडम्बरहीन, सादा तथा उत्तेजनाहीन होने के कारण उसकी लोकप्रियता अधिक नहीं थी। वह न तो विपिनचंद्र पाल, अरविन्द घोष तथा ब्रह्मबांधव उपाध्याय जैसे राजनैतिक नेताओं के उल्लास का मुकाबला कर सकता था

और न ही बंगाल के अधीर, साहसिक युवा-वर्ग को संतुष्ट कर सकता था। ऐसे हालात में राजनैतिक उग्रवाद - तीसरी प्रवृत्ति का उभर कर आना स्वाभाविक ही था। इसको अभिव्यक्ति मिली न्यू इंडिया (जिसके संपादक थे विपिनचन्द्र पाल), बन्दे मातरम् (जिसके संपादक थे अरविन्द घोष), संध्या (जिसके संपादक थे ब्रह्मबांधव उपाध्याय) तथा युगान्तर (जिसके संपादक थे भूपेन्द्रनाथ दत्त) आदि पत्रिकाओं में। राजनैतिक उग्रवादी भारत के लिए स्वशासन (सैल्फ गवर्नमेंट) की माँग कर रहे थे जो किसी भी प्रकार से ब्रिटिश संरक्षण या ब्रिटिश प्रभुता के आधीन न हो (जैसा कि नरमपंथियों का विचार था) तथा जो ब्रिटिश संबधों तथा प्रभावों से अपना नाता तोड़ ले।

राजनैतिक उग्रवादी नेताओं ने स्वराज की स्थापना का नारा दिया और उसे प्राप्त करने के रास्तों की खोज का प्रयत्न किया। वे जल्दी ही इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बहिष्कार की नीति को ब्रिटिश वस्तुओं तथा शैक्षिक संस्थानों के दायरे से बढ़ाकर ब्रिटिश प्रशासन, ब्रिटिश अदालतों तथा ब्रिटिश सेवाओं तक ले जाना चाहिए ताकि भारत में ब्रिटिश प्रशासन की जड़ों को हिलाया जा सके। विपिनचंद्र पाल ने इसे 'सरकार को किसी भी प्रकार की स्वैच्छिक अवैतनिक सेवाएँ प्रदान करने का विरोध या 'निष्क्रिय विरोध' या 'अवज्ञा' की संज्ञा दी। अप्रैल 1907 में बंदे मातरम् में छापे गए कई लेखों में अरविन्द घोष ने इस योजना को और आगे बढ़ाया। उनका सुझाव था कि ब्रिटिश वस्तुओं. ब्रिटिश शिक्षा व्यवस्था, ब्रिटिश न्यायतन्त्र तथा प्रशासन का 'सुयोजित ढंग से बहिष्कार ' किया जाना चाहिए तथा अन्यायपूर्ण नियमों का नागरिक उल्लंघन द्वारा सामाजिक बहिष्कार किया जाना चाहिए।

ब्रिटिश दमन के भारतीय सहनशीलता की सीमा के आगे बढ़ जाने की स्थिति में अरविन्द घोष ब्रिटिश विरोधी सशस्त्र संघर्ष करने के लिए तैयार थे। ब्रह्मबांधव उपाध्याय ने कहा कि– सैनिक की तो बात ही क्या अगर चौकीदार, कांस्टेबल, डिप्टी, मुंसिफ या क्लर्क अपने-अपने कार्यों से इस्तीफा दे दें तो हिंदुस्तान में ब्रिटिश राज कैसे चल पायेगा।

जिस उत्साह से राजनैतिक उग्रवाद के प्रतिपादकों ने स्वराज के मामले को सामने रखा और उसकी प्राप्ति के लिए निष्क्रिय विरोध का सुझाव दिया, उसके सामने सभी अन्य बातें गौण हो गईं, यहाँ तक कि बंगाल का विभाजन, जिससे इस आंदोलन की शुरूआत हुई थी, भी उतना महत्वपूर्ण नहीं रहा। स्वराज के लिए संघर्ष के महत्व के मुकाबले बंगाल की एकता का मामला उतना महत्वपूर्ण नहीं रहा, तथा अरविन्द घोष के शब्दों में (28 अप्रैल 1907, बंदे मातरम्) यह सबसे तुच्छ तथा सबसे संकीर्ण राजनैतिक उद्देश्य, लगने लगा। इस प्रकार एक प्रादेशिक मामले के राष्ट्रीयकरण तथा उसके साथ जुड़े राष्ट्रीय उद्देश्य के लक्ष्य की स्पष्टता ने राष्ट्रीय नेताओं को दो वर्ष के समय में ही असाधारण प्रगति का अवसर प्रदान कर दिया।

बोध प्रश्न 2

1 निम्नलिखित पत्रिकाओं को उनके संपादकों के नामों से जोड़िये।

i) बंदे मातरम्	क) विपिनचंद्र पाल
ii) संध्या	ख) अरविन्द घोष
iii) न्यू इंडिया	ग) ब्रह्मबांधव उपाध्याय

2 लगभग दस लाइनों में स्वदेशी आंदोलन के शुरू होने के कारणों की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....
....
....
....

3 स्वदेशी आंदोलन के दौरान उभरी कार्यविधियों के बारे में लगभग 100 शब्दों में लिखिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

4 स्वदेशी आंदोलन के दौरान उत्पन्न राजनैतिक प्रवृत्तियां क्या-क्या थीं? उत्तर पाँच लाइनों में लिखिए।

....
....
....
....
....

11.8 जन-आंदोलन की संकल्पना : मजदूर और किसान

स्वराज का राष्ट्रीय उद्देश्य तथा सभी क्षेत्रों में बहिष्कार और निष्क्रिय विरोध द्वारा उसकी प्राप्ति जन-मानस से न केवल व्यापक चेतना की अपेक्षा करते थे बल्कि ब्रिटिश-विरोधी जन- आंदोलनों में उनकी एक निष्ठ सहभागिता भी आवश्यक मानते थे। स्वदेशी आंदोलन की प्रगति के साथ-साथ समूचा शिक्षित मध्यम वर्ग तो जागृत हो गया था, साथ ही जमींदार वर्ग के कुछ लोग, व्यावसायिक तथा व्यापारी-वर्ग के प्रतिनिधि भी राष्ट्रीय उद्देश्य के प्रति सहानुभूति रखने लगे थे। लेकिन गरीब वर्ग का अपार जनसमुदाय, विशेषकर मजदूर-वर्ग तथा किसान, अभी इस आंदोलन में शामिल नहीं हुए थे।

11.8.1 मजदूर

लेकिन कुछ स्वदेशी कार्यकर्ताओं ने (विशेषकर अश्विनी कुमार बनर्जी, प्रभात कुसुम रायचौधरी, अलथ्नैसियस अपूर्व कुमार घोष तथा प्रेमतोष बोस) बंगाल के मजदूरों को संगठित करने का प्रयत्न किया और उनकी आर्थिक कठिनाइयों को राजनैतिक दिशा देने की कोशिश की।

इस दिशा में पहल की हावड़ा में बर्न कंपनी के 247 क्लर्कों ने जिन्होंने सितंबर 1905 में एक अपमानजनक कार्य-नियम के विरोध में हड़ताल कर दी। इसके बाद कलकत्ता ट्रामवेज, जूट मिलों तथा रेल वर्कशापों में हड़तालें हुई। कलकत्ता में कुलियों, वेटरों तथा

सफाई कर्मचारियों ने भी अपनी आर्थिक माँगों के लिए हड़ताल का सहारा लिया। इसी प्रकार का राजनैतिकरण छापाखानों, जूट मिलों और रेलवे के मजदूरों में भी देखा गया। सरकारी छापाखाने में एक उग्र हड़ताल के बाद पहली वास्तविक मजदूर यूनियन बनी जो थी छापाखानों के मजदूरों की यूनियन जिसकी स्थापना अक्टूबर 1905 में हुई।

इसी तरह के संघर्ष के फलस्वरूप जो इस्टर्न इंडियन रेलवे के मजदूरों ने शुरू किया था, जुलाई 1906 में रेलवेज यूनियन की स्थापना हुई। विपिनचन्द्र पाल, श्यामसुन्दर चक्रवर्ती तथा लियाकत हुसैन जैसे स्वदेशी नेताओं ने आसनसोल, रानीगंज और जमालपुर के उत्तेजित मजदूरों को संगठित करने का प्रयत्न किया जिसका नतीजा यह हुआ कि 27 अगस्त 1906 को जमालपुर वर्कशाप में पुलिस ने गोली चलाई। जूट मजदूरों ने, भी, जो 1905 से इसी प्रकार की माँगों को लेकर संघर्ष कर रहे थे, अश्विनी कुमार बनर्जी के नेतृत्व में बज-बज में अगस्त 1906 में इंडियन मिल हैंड्सज यूनियन बना ली। लेकिन बाद में सरकार के प्रतिकूल रवैये के कारण इन सभी यूनियनों को धक्का लगा। चूँकि ये राष्ट्रवादी मजदूरों के प्रति सैद्धांतिक रूप से वचनबद्ध नहीं थे इसलिए 1907 के बाद मजदूरों को संगठित करने का उनका उत्साह हल्का पड़ गया।

11.8.2 किसान

स्वदेशी आंदोलन के नेताओं ने मजदूरों को संगठित करने का प्रयत्न तो किया लेकिन किसानों के बारे में उन्होंने बिल्कुल भी कोशिश नहीं की। हालाँकि समितियों की ग्रामीण इलाकों में बहुत-सी शाखायें थीं (जैसे स्वदेशबांधव समिति जिसकी बरिसाल जिले में 175 शाखायें थीं) जो जन-समुदाय को निष्क्रिय प्रतिरोध के प्रति जागरूक बनाती थीं लेकिन वे किसानों को संगठित करने में असफल रहीं। अधिकतर भूखे-नंगे किसानों के लिए उनके राष्ट्रीय नारे अस्पष्ट, दूरस्थ और यहाँ तक कि थोथा शब्दाडम्बर ही रहे। इसका असली कारण इन नेताओं में कृषि की दशा सुधारने या किसान-समुदाय की हालत को बेहतर बनाने वाले कार्यक्रमों के प्रति सच्ची रुचि का अभाव था। बंगाल के मध्यम वर्ग के लोग चाहे वे व्यवसायी हों या क्लर्क या व्यापारी, उनकी आर्थिक स्मृद्धि उनकी पैतृक जमीन से आमदनी पर निर्भर थी। उनकी आय के इस स्त्रोत के कारण किसानों के संदर्भ में वे शोषक वर्ग में आते थे और उनके अपने हितों और किसानों की आकांक्षाओं के बीच एक अन्तर्विरोध पैदा हो गया था। पहले ही बंगाली मध्यम वर्ग सरकार द्वारा 1885 के टेनैन्सी एक्ट के अंतर्गत खेतिहरों को दिये गये तुच्छ पट्टेदारी के हक से अप्रसन्न था। उनके प्रतिनिधियों को ''गुस्ताख रैयतों'' से चिढ़ थी और ''भद्रलोक'' (सभ्य समाज) होने के नाते वे इन '' छोटे लोग(निम्न वर्ग) को तिरस्कारपूर्ण नजर से देखते थे।

स्वदेशी आंदोलन ने किसानों के ऋण के भार, समय-समय पर जमीन से बेदखल किये जाने और बेगार (बिना मजदूरी के जबर्दस्ती काम लेना) लिये जाने के विरुद्ध बिल्कुल भी आवाज नहीं उठाई। किसी भी **समिति** ने काश्तकारों को अत्याधिक कर और किराये के खिलाफ आंदोलन शुरू करने का आह्वान नहीं दिया। यहाँ तक कि अरविन्द घोष जैसे अतिवादी नेता ने भी ऐसा आंदोलन शुरू करने से इंकार कर दिया कि कहीं राष्ट्रवादी जमींदारों के हितों को हानि न पहुँचे (अप्रैल 1907 में बंदे मातरम् में अरविन्द घोष के लेख) इससे भी दुर्भाग्यपूर्ण बात यह थी कि स्वदेशी आंदोलन में कुछ देर बाद हिंदू पुनर्जागरण के प्रतीकों तथा शब्दावली पर जरूरत से ज्यादा जोर दिया जाने लगा जिसके फलस्वरूप मुस्लिम किसानों (जो पूर्वी बंगाल के किसानों में बहुसंख्यक थे) में इस आंदोलन के प्रति अधिक उत्साह नहीं रहा।

11.9 सांप्रदायिक समस्या

पारंपरिक समाजों में अक्सर राष्ट्रीय भावना को उभारने का एक लोकप्रिय तरीका धर्म का इस्तेमाल करना होता हैं और सामान्यतया इसके नतीजे नुकसानदायक (परिणाम

दुर्भाग्यपूर्ण) होते हैं। स्वदेशी आंदोलन का अनुभव भी इससे भिन्न नहीं था। बंगाल में नेताओं ने हिंदू धर्म और इस्लाम से जो राजनैतिक फायदा उठाना चाहा उससे दोनों समुदायों के बीच की खाई और गहरी हो गई। बंगाल के लोगों और इलाके का बँटवारा तथा हिंदू और मुसलमानों को एक-दूसरे से लड़वाना, यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद के जाने-पहचाने हथकंडे थे। इनकी शुरूआत हुई थी 1905 में लॉर्ड कर्जन, सर ऐन्ड्रूज फ्रेजर और सर हर्बट रिसले से और जैसा कि पहले बताया जा चुका है, इसी नीति को बनाये रखा लॉर्ड मिन्टो (जो कर्जन के स्थान पर वाइसराय बन कर आया था), सर बमफिलडे फुलर (जो पूर्वी बंगाल और आसाम के पहले लेफ्टीनेंट गवर्नर थे) और सर लैंसलौट हेयर (जो फुलर के स्थान पर आये थे) ने। जहाँ मिन्टो बंगाली राजनीतिज्ञों की ''शक्ति को कम किये जाने'' का कायल था, वहाँ फुलर ने वास्तव में ''जनसंख्या के दो मुख्य हिस्सों को (हिंदू और मुस्लिम) एक दूसरे के खिलाफ भड़काना'' शुरू कर दिया और हेयर ने सरकारी नौकरियों के मामले में हिंदूओं के मुकाबले में मुसलमानों को विशेष सहायता देने के प्रस्ताव पर विचार किया।

शिक्षित मुसलमानों को आकर्षित करने के साथ-साथ प्रशासन ने उनमें कुलीन तत्वों को मुस्लिम राजनैतिक शक्ति के विषय में विचार करने को प्रोत्साहित किया जिसके फलस्वरूप अक्तूबर 1906 में ढाका के नवाब सलीमुल्लाह के नेतृत्व में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। इसके अलावा, पूर्वी बंगाल के ग्रामीण इलाकों में **मुल्लाओं** और मौलवियों का बहुत असर था और वे अक्सर जमींदारों (जिनमें अधिकतर हिंदू थे) और काश्तकारों (जिनमें अधिकतर मुसलमान थे) के बीच अंतर्विरोध को धार्मिक विरोध के रूप में प्रस्तुत करते थे।

इस सबके बावजूद स्वदेशी आंदोलन के दौरान सांप्रदायिक सद्‌भाव के बारे में जोरदार तर्क दिये गये (जैसा कि संजीवनी के लेखों में हुआ)। हिंदू मुस्लिम भाईचारे के अत्यन्त सुन्दर दृश्य देखने को मिले (जैसे 23 सितम्बर 1906 को कलकत्ता में 10,000 विद्यार्थियों का संयुक्त प्रदर्शन)। कुछ विशिष्ट मुस्लिम नेताओं ने आंदोलन में भाग लिया (जैसे लियाकत हुसैन, अब्दुल हकीम गजनवी, अब्दुल रसूल, मनीरुज्जमान, इस्माइल हुसैन, सिराजी, अबुल हुसैन और दीन मोहम्मद)। लेकिन इन रचनात्मक कार्यों का अधिकतर प्रभाव शिक्षित, मध्यम वर्ग के राष्ट्रीय नेताओं को अपने अनुयायियों द्वारा उत्साहित करने के लिए हिंदू रूढ़िवादी **प्रक्रियाओं, बिंबों** तथा **मिथकों** के प्रयोग करने की कोशिशों से नष्ट हो गया।

बंदे मातरम्, संध्या तथा नवशक्ति जैसी राष्ट्रवादी पत्रिकाओं के हिंदूवादी **उपदेशों**, हिंदू इतिहास का गौरवगान, प्राचीन हिंदू राष्ट्र की स्मृति, स्वदेशी (ब्रिटिश वस्तुओं को न इस्तेमाल करना) की शपथ हिंदू देवता के समक्ष लेना, देवी काली के सामने आत्म-बलिदान का व्रत लेना तथा गीता से उद्धरणों आदि ने मुसलमानों को हिंदूओं के नजदीक लाने में रुकावटें पैदा की। यही नहीं इनके कारण दोनों समुदायों का एक-दूसरे के प्रति रवैया और भी कठोर हो गया। बीराष्टमी (विगत के आठ हिंदू वीरों की स्मृति में) का मनाया जाना, राष्ट्रीय शिक्षा कार्यक्रमों में पारंपरिक हिंदू मान्यताओं पर जोर देना, सार्वजनिक भाषणों में पौराणिक प्रतिमानों का प्रयोग, बंगालियों की ''अन्तरात्मा के प्रत्यक्ष प्रतिनिधि के रूप में देवी दुर्गा पर जोर देना आदि ने राष्ट्रीय आंदोलन को धार्मिक रूप दे दिया। विपिनचंद्र पाल ने ऐसे विकारों को इस आधार पर उचित बताया कि धर्म और राष्ट्रीय जीवन को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता और ''इन्हें अलग करने का अर्थ होगा वैयक्तिक जीवन से धार्मिक और नैतिक मूल्यों को अलग कर देना'' (सुमित सरकार, द स्वदेशी मूवमेंट इन बैंगाल, 1903-1908, देहली, 1977-76) ब्रह्मबांधव उपाध्याय तो एक कदम और आगे बढ़ गये और उन्होंने अपने श्रोताओं से कहा: ''तुम कुछ भी सुनो, कुछ भी सीखो, कुछ भी करो – हिंदू बने रहो, बंगाली बने रहो...।'' **बंदे मातरम्** के संपादक अरविंद घोष तो इनसे भी कहीं आगे निकल गये जब उन्होंने हिंदू समाज के वर्ग विभाजन में जनतंत्र, यहाँ तक कि समाजवाद के बीज तक ढूँढ निकाले। (''कॉस्ट एंड डिमौक्रैसी, बंदे मातरम्, 21 सितम्बर 1907) आंदोलन की चरमसीमा के समय प्रमुख नेताओं द्वारा हिंदू जागरणवाद के प्रचार ने नवाब सलीमुल्लाह के आदमियों और मुल्लाओं को कर्जन की आशा के अनुसार मुसलमानों में सांप्रदायिक द्वेष फैलाने का अवसर प्रदान कर दिया।

इन परिस्थितियों में सांप्रदायिक तत्वों के लिए सांप्रदायिक दंगों का सहारा लेना आसान था। बंगाल के पूर्वी हिस्से में कई साम्प्रदायिक दंगे हुए, पहले ईश्वरगंज में, मई 1906 में मैमनसिंह जिले में, उसके बाद मार्च 1907 में कोमिल्ला, जमालपुर, दीवानगंज और बख्शीगंज में। अप्रैल-मई 1907 में दुबारा मैमनसिंह में दंगे हुए। दंगा करने वालों को साम्प्रदायिकतावादियों द्वारा फैलाई गई इन अफवाहों से शह मिली कि ब्रिटिश सरकार ने ढाका में प्रशासन की बागडोर नवाब सलीमुल्लाह के हाथ में दे देने का फैसला कर लिया है। दंगों से दबा हुआ कृषक जमींदार संघर्ष स्वरूप उभर कर सामने आ गया क्योंकि दंगों का निशाना अक्सर हिंदू जमींदार और महाजन (पैसा ब्याज पर उधार देने वाले) थे। हालाँकि राष्ट्रवादियों को इन परिस्थितियों से खतरा महसूस हो रहा था फिर भी उन्होंने सारी बात को ठीक से समझने का कोई प्रयत्न नहीं किया। उन्होंने दंगे करने वालों को अंग्रेजों के भाड़े के टट्टू करार दे दिया और इस बीमारी की जड़ में जाने की कोई कोशिश नहीं की। नतीजा यह हुआ कि धर्म की सरगर्मियाँ कम होने के बजाए बढ़ती रही।

11.10 क्रांतिकारी आतंकवाद का उदय

लेकिन किसी भी आंदोलन की सफलता उसमें जनता के व्यापक रूप से भाग लेने पर निर्भर करती है। परंतु स्वदेशी आंदोलन में इसका अभाव रहा। कृषकों तथा मजदूरों से उसे आंशिक सफलता मिलने के कारण, सांप्रदायिक उलझन को न सुलझा पाने के कारण 1907 के मध्य तक भी स्वदेशी आंदोलन अपनी चरम सीमा तक नहीं पहुँच पाया और न ही यह पूर्णतया एक जन-आंदोलन में ही बदल सका। इसके अलावा एक प्रबल साम्राज्यवाद-विरोधी आंदोलन के रूप में इसे अपने शक्तिशाली विरोधी के दमनकारी कदम का शिकार होना पड़ा। प्रशासन ने सार्वजनिक स्थानों पर 'बंदे मातरम्' नारे लगाने पर रोक लगा दी, आंदोलन में किसी प्रकार से भी भाग लेने वाले सरकारी नौकरी के लिए अयोग्य करार दे दिए जाते थे तथा विद्यार्थियों को भाग लेने पर दण्ड देना पड़ता था या निकाल दिया जाता था। बरीसाल में गोरखों के दलों को आंदोलनकारियों को सबक सिखाने के लिए भेजा गया तथा पुलिस और अधिकारियों को उन पर शारीरिक अत्याचार तथा अपमान करने के लिए खुली छूट दे दी गई। चरम सीमा तो अप्रैल 1906 में पहुँची जब बरीसाल में प्रांतीय सभा में भाग ले रहे प्रतिनिधियों पर पुलिस ने लाठी चार्ज किया। इसके बाद धरना देने वालों को सबक सिखाने के लिए बेंत मारे जाने लगे और उनके खिलाफ मुकदमे दर्ज किये जाने लगे, सार्वजनिक सभाओं और प्रदर्शनों पर रोक लगाई जाने लगी, विपिनचंद्र पाल और लियाकत हुसैन समेत बहुत से लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें सजायें दी गई। ताकत का मुकाबला ताकत से करने का प्रश्न – आतंक के विरुद्ध आतंक का करने का प्रश्न उभर कर सामने आ गया।

हिंसात्मक तरीका बंगाल के माध्यम वर्गीय युवाओं के रुमानी दुःसाहस को भी खूब पसन्द आया जो जन-आंदोलन के सफल न होने पर वैयक्तिक शौर्य के कार्यों में सांत्वना ढूंढते रहे और जब खुली राजनीति सरकार को प्रभावित नहीं कर सकी तो उन्होंने अपनी उम्मीदें गुप्त सभाओं पर टिका दी। हिंसा का रास्ता उनको भी पसन्द आया जिन्हें बहुत जल्दी थी और जिनकी सहनशक्ति समाप्त हो चुकी थी। **युगान्तर** ने अगस्त 1907 में लिखा 'यदि हम बेकार बैठे रहें और विरोध में खड़े होने से इंकार कर दें जब तक कि सारी जनता में दुःसाहस न भर जाये तो हम अनंत तक हाथ पर हाथ धरे बैठे रहेंगे.....।' उन्नत विशिष्ट वर्ग के सामने दमनकारियों के विरुद्ध हथियार उठाने का ही विकल्प रह गया था, जिससे वह घृणित ब्रिटिश अधिकारियों और उनके गुर्गों के दिलों में आतंक भर सकें और जन-साधारण के सामने मौत से जूझने वाला आदर्श स्थापित कर सकें। जल्दी ही कुछ समितियाँ विशिष्ट सीमित समितियों में बदल गयीं, जो चुनींदा हत्याओं के बारे में षडयंत्र रचने लगी तथा हथियार खरीदने के लिए धन जुटाने के लिए राजनैतिक डकैतियाँ डालने लगीं। इन क्रांतिकारी गतिविधियों की अगुवाई कलकत्ता के युगान्तर ग्रुप और ढाका की अनुशीलन समिति ने की।

प्रफुल्ल चकी मारा गया और कुख्यात ब्रिटिश मैजिस्ट्रेट किंगफोर्ड की हत्या पर हमले के आरोप में अठारह वर्षीय खुदीराम बोस को फाँसी दे दी गई हालाँकि किंगफोर्ड बच गया था। अप्रैल 1908 में कलकत्ता के माणिकतला क्षेत्र में बम बनाने की एक गुप्त फैक्टरी

पकड़ी गई तथा अरविंद घोष सहित बहुत से क्रांतिकारियों को गिरफ्तार कर लिया गया। लेकिन क्रांतिकारी आतंकवाद इस सदमें को सह गया। वह न केवल जारी रहा बल्कि देश-विदेश के अन्य भागों में भी फैल गया। यह हंगामाई तथा स्वदेशी आंदोलन की विरासत था।

बोध प्रश्न 3

1 किसानों ने स्वदेशी आंदोलन में भारी संख्या में भाग क्यों नहीं लिया। उत्तर 10 लाइनों में दीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2 आपके विचार में 1906- 07 में सांप्रदायिक परिस्थिति खराब क्यों हुई? उत्तर 10 लाइनों में दीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3 1907- 08 में "क्रांतिकारी आतंकवाद" का उदय कैसे हुआ? उत्तर 10 लाइनों में दीजिए।

....
....
....
....
....
....
....

....

....

....

11.11 सारांश

क्रांतिकारी आतंकवाद के विकास ने भारत में ब्रिटिश सरकार को प्रातंकित तो किया लेकिन वह स्वदेशी आंदोलन की तरह उनके प्रभुत्व को चुनौती नहीं दे पाया न ही वह उन्हें किसी संकट में डाल पाया जो कि एक बढ़ते हुए जन संग्राम द्वारा ही संभव था। स्वदेशी आंदोलन का अन्ततः गुप्त संगठनों के रूप में बदल जाना इस बात का परिचायक है कि इस आंदोलन की कई कमियां और सीमायें थीं। लेकिन इन कमजोरियों के बावजूद विचारधारा के स्तर पर और राजनैतिक आंदोलन की प्रणाली और व्यवस्था के रूप में इस आंदोलन की सफलतायें न केवल आश्चर्यजनक थीं बल्कि नवीन और कई मायनों में अपने समय से कहीं आगे थीं।

स्वदेशी आंदोलन ने पहले के राष्ट्रवादियों के तरीकों– आवेदन तथा प्रार्थना करने को समाप्त किया तथा नरम राजनैतिक कार्यक्रम को लगभग अस्वीकार कर दिया। इसने हिन्दुस्तानी लोगों के सामने स्वराज या स्वतंत्रता का उद्देश्य रखा और उन्हें हिन्दुस्तान को ब्रिटिश साम्राज्यवादी शिकंजे से छुड़ाने के लिए प्रेरित किया। स्वराज की प्राप्ति के लिए इसने राष्ट्र के लिए जन विरोध का रास्ता चुना और **संविधानवाद को पीछे धकेल दिया।** इस प्रकार के विरोध की सफलता जन-समुदाय के भाग लेने पर निर्भर करती है इसीलिए स्वदेशी आंदोलन ने अपने लोकप्रिय आधार को विकसित करने का प्रयत्न किया और पूरी तरह जन-आंदोलन बन सकने में सफल न होने के बावजूद इसने आने वाली पीढ़ियों के सामने जन-आंदोलन का आदर्श रखा। इस सबके और अपने "रचनात्मक स्वदेशी" स्वरूप के कारण इस आंदोलन ने प्रथम विश्व महायुद्ध के बाद गांधी जी द्वारा शुरू किये गये जन आंदोलनों के लिए रास्ता बनाया। अहिंसा के सिद्धांत के सिवा गांधी जी का 1920 के बाद स्वराज को "असहयोग", "नागरिक अवज्ञा" तथा "रचनात्मक कार्यक्रमों" द्वारा प्राप्त करने का आंदोलन बंगाल के पंद्रह वर्ष पहले के स्वदेशी आंदोलन के बहिष्कार और निष्क्रिय विरोध से बहुत मिलता जुलता था। स्वदेशी आंदोलन ने कर्जन जैसे कट्टर साम्राज्यवादियों का कड़ा विरोध किया और उसके 1905 में चले जाने के बाद लॉर्ड मिन्टो की सरकार का भी विरोध किया। अगस्त 1906 में पूर्वी बंगाल और आसाम के लेफ्टीनेंट गवर्नर फुलर का इस्तीफा भी इसी आंदोलन का परिणाम था और अन्ततः 1911 में विभाजन को रद्द करके बंगाल के पुनर्एकीकरण में भी इसी आंदोलन का हाथ था। लेकिन समस्त भारत के संदर्भ में यह उस आंदोलन की मुख्य सफलता नहीं थी। इसकी मुख्य सफलता थी भारतीय राष्ट्रीयता को एक नयी कल्पनाशील दिशा देना तथा उसको कड़े साम्राज्यवाद-विरोधी आंदोलन के ऊँचे स्तर पर पहुँचा देना।

जैसा कि सभी राजनैतिक और सामाजिक उथल-पुथल की घटनाओं में होता है स्वदेशी आंदोलन ने भी बंगाल की सांस्कृतिक और बौद्धिक गतिविधियों पर अपनी गहरी छाप छोड़ी जिसका असर देश के विभिन्न भागों पर भी पड़ा। इसके कारण न केवल देश भक्ति से भरी रचनाओं, नाटकों और रंगमंच का सृजन हुआ बल्कि इसने रवीन्द्रनाथ टैगोर के नेतृत्व में बंगाल चित्रकला पद्धति को भी जन्म दिया, जगदीश चंद्र बोस और प्रफुल्ल चंद्र राय की देखरेख में वैज्ञानिक जिज्ञासा को जगाया, दिनेश चंद्र सेन के प्रयत्नों के द्वारा लोक-परंपराओं में रूचि पैदा की और राखालदास बैनर्जी, हरप्रसाद शास्त्री और अक्ष्य कुमार मित्र की सहायता से ऐतिहासिक अनुसंधान को बढ़ाया।

11.12 शब्दावली

सर्वसत्तावाद: एक ऐसी अवधारणा जिसमें लोगों की इच्छाओं को ध्यान में रखे बिना सत्ता को उन पर लादा जाता है।
सिद्धांतवादी: वे लोग जो किसी विशेष विचारधारा/सिद्धांत के प्रचार में रहते हैं।
राजनैतिक उग्रवाद: एक ऐसी अवधारणा जिसमें राजनैतिक समस्याओं का हल उग्रवादी तरीकों द्वारा ढूंढा जाता है।
राजनीतिकरण: ऐसी प्रक्रिया जिसके द्वारा राजनीति लोगों के जीवन के बारे में सोचने के ढंग का अंग बन जाती है।
नस्लवादी: दूसरे के मुकाबले अपनी नस्ल को समझने की भावना समझने को।
धार्मिक पुनरूत्थानवाद: एक ऐसी अवधारणा जिसमें धार्मिक विरास का सहारा वर्तमान के उद्देश्यों या विचारों को उचित ठहराने के लिए लिया जाता है।

11.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 i) ✓ ii) × iii) × iv) ×
2 देखिए भाग 11.3

बोध प्रश्न 2

1 i) ख ii) ग iii) क
2 देखिए भाग 11.5
3 देखिए भाग 11.6
4 देखिए भाग 11.7

बोध प्रश्न 3

1 देखिए भाग 11.8
2 देखिए भाग 11.9
3 देखिए भाग 11.10

खंड 1 और 2 के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

ए.आर. देसाई, *भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि*
रजनी पामदत्त, *आज का भारत*
तारा चन्द, *भारतीय स्वतन्त्रता–संग्राम का इतिहास,* खंड 2 और 3
बिपन चन्द्र, *भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय*
अयोध्या सिंह; *भारत का मुक्ति-संग्राम*
कार्ल मार्क्स, फ्रे. एंगेल्स, *भारत का प्रथम स्वातंत्र्य–संग्राम*
आर.एल. शुक्ला, (स.), *आधुनिक भारत*